काले धंधे के रक्षक

प्रभाष जोशी

चली, कोई तो मैदान में उतरा। न सही लोकसभा चुनाव जैसे नाजुक और निर्णायक मौके पर काला धन लेकर चुनावी विज्ञापन को खबर बना कर बेचने वाला अखबार मालिक, उसका संपादक या जनरल मैनेजर। कोई प्रमोद रंजन ही सही, जिनका मानना है कि विज्ञापन को खबर बना कर बेचने से ज्यादा बुरा और खतरनाक तो 'पत्रकारिता में जाति धर्म और मित्र धर्म का निर्वाह' है। क्योंकि 'इससे मूल्यों में ऐसे भयावह क्षरण से नुकसान दलित-पिछड़ों की राजनीतिक ताकतों, वाम आंदोलनों और प्रतिरोध की उन शक्तियों का भी हुआ है जो इसके प्रगतिशील तबके से नैतिक और वैचारिक समर्थन की उम्मीद करते हैं। मीडिया के ब्राह्मणवादी पूंजीवाद ने इन्हें उपेक्षित, अपमानित और दिग्भ्रमित भी किया है।'

प्रमोद रंजन का यह भी निष्कर्ष है कि काले धन से खबरों के पैकेज बेचने-खरीदने से कुछ नहीं होता क्योंकि वोट देने वाली जनता समझ गई है कि इन अखबारों की कोई विश्वसनीयता नहीं है। काले धन से इन अखबारों में खबरें छपवाने वाले अक्सर हार जाते हैं। लेकिन जो लोग जाति धर्म और मित्र धर्म निबाहते हुए विश्वास का धंधा कर रहे हैं वे ज्यादा बड़ा नुकसान कर रहे हैं क्योंकि वे दलित-पिछड़ों, वाम आंदोलनों और प्रतिरोध की शक्तियों को अपमानित, उपेक्षित और दिग्भ्रमित करते हैं।

अब पैकेज के काले धंधे को इनने बुरा मान लिया है इसलिए इसे अपना समर्थन मान कर मुझे संतोष कर लेना चाहिए। लेकिन इससे भी बुरा इनने पत्रकारिता में जाति धर्म और मित्र धर्म को बताया है। और उदाहरण के नाम पर 'प्रभात खबर' के प्रधान संपादक हरिवंश और पत्रकार/ लेखक सुरेंद्र किशोर की टिप्पणी को उद्धृत किया है। हरिवंश कोई पैंतीस साल से मेरे मित्र हैं और सुरेंद्र किशोर ने जनसत्ता की शुरुआत से रिटायर होने तक एक विश्वसनीय और प्रामाणिक पत्रकार की तरह काम किया है। इसलिए आइए पहले पत्रकारिता में जाति और मित्र धर्म और ब्राह्मणवादी पूंजीवाद को लें।

हरिवंश जेपी आंदोलन से कुछ पहले से मेरे मित्र हैं। बांका उनका मेरे साथ जाना भी कोई बड़ी बात नहीं है। बीसियों सभाओं-सम्मेलनों, आंदोलनों और संघर्षों में वे मेरे साथ गए हैं। उनकी सोहबत मुझे प्रिय और महत्त्वपूर्ण लगती है। जो वरिष्ठ पत्रकार दिग्विजय सिंह का मीडिया प्रबंधन कर रहे थे वे हम दोनों के मित्र हैं। उनने डायरी भी लिखी है यह मुझे दिल्ली में पता चला जब मैं अपने अभियान के लिए सामग्री और सबूत जुटा रहा था। बांका अकेली जगह नहीं थी जहां मैं इस चुनाव के दौरान गया। हिंदी इलाके के हर राज्य में पत्रकारों से बात करके मैंने सामग्री ली। हरिवंश अपना लेख 'खबरों का धंधा' पहले छब्बीस मार्च को ही लिख चुके थे जिसकी आखिरी लाइन थी- विज्ञापन और खबरें दो चीजें हैं। जिन चीजों के साथ स्पांसर्ड, प्रायोजित, पीके मार्केटिंग मीडिया इनिशिएटिव लिखा होगा वे विज्ञापन होंगे। हम खबर की शकल में विज्ञापन नहीं छापेंगे। हरिवंश ने यह एक लेख ही नहीं, दो और लेख, एक पाठक का पत्र भी पहले पेज पर छापा। उनने चुनाव कवरेज की अपनी आचार संहिता भी खूब बड़ी छापी। इसमें नाम-पता देकर पाठकों से कहा कि इसका उल्लंघन हो रहा हो तो तत्काल शिकायत कीजिए। चुनाव के बाद 11 मई को उनने फिर- खबरों का धंधा-2 फिर पाठकों के द्वार- शीर्षक से लेख लिखा जिसमें एक पाठक की शिकायत को अपने पूरे कवरेज और आचरण से जांचा। किसी भी हिंदी अखबार ने न ऐसा अभियान चलाया न पाठकों के सामने ऐसी जवाबदेही दिखाई।

लेकिन नयनसुख प्रमोद रंजन को न यह दिखा और न इस पर उनने विश्वास किया। क्यों? (यह बताऊंगा तो बहस पटरी से उतर जाएगी) अभी यही कि 'प्रथम प्रवक्ता' के सोलह जुलाई के अंक में उस पत्रिका के झारखंड ब्यूरो की रिपोर्ट बताती है 'प्रभात खबर' में भी खबरें उसी की ज्यादा छपीं जिसने विज्ञापन ज्यादा दिया। वहां अघोषित नियम बनाया गया कि जो पैसा देगा उसको कवरेज मिलेगा।' प्रमोद रंजन को ये दो लाइनें प्रभात खबर के तीन महीने के कवरेज अभियान और पाठकों से खुली जवाबदेही को सिरे से खारिज करती क्यों लगती हैं। इसका भी जवाब दूंगा तो दलित-पिछड़ों और वाम आंदोलनों की बड़ी क्षति होगी। इसलिए फिलहाल सिर्फ मित्र धर्म पर।

प्रथम प्रवक्ता का वह अंक जिसे प्रमोद रंजन ने मेरे निर्देशन में निकला कहा है उसकी पैकेज वाली सारी सामग्री राम बहादुर राय ने मेरे पास भेजी। उसी के आधारपर इस पत्रिका में मैंने लेख लिखा और उस पूरी सामग्री को मैंने संपादित किया। झारखंड ब्यूरो की रपट की वे दो लाइनें मेरी जानकारी और लिखे के विरुद्ध थीं। उनको न तो सबूत और पदार्थ के साथ पुष्ट किया गया था न उनका विश्लेषण। मैं जो प्रमोद रंजन के कहे मित्र धर्म निबाहता हूं- मैंने ही वे लाइनें संपादित करके बाहर क्यों नहीं कीं? क्योंकि मैं स्वभाव से संवाददाता पर भरोसा और अपने से भिन्न राय की कदर करता हूं। और मेरा मित्र धर्म तो ठीक है, प्रथम प्रवक्ता के संपादक राम बहादुर राय तो हरिवंश के और भी गहरे और पुराने मित्र हैं। अपनी पत्रिका में उनने ये दो लाइनें क्यों जाने दीं? मित्र धर्म क्यों नहीं निभाया?

यह तो खुली प्रमोद रंजन के मित्र धर्म के आरोप से तात्कालिक संदर्भ की पोल। यह भी झूठ है कि सभी अखबार मीडिया इनिशिएटिव लिख रहे थे। मैंने इन अखबारों की जो प्रतियां- प्रेस परिषद को जांच के लिए दी हैं उनमें कुछ भी नहीं लिखा है। और ऐसे इनिशिएटिव के बारे में क्या सोचता हूं- यह भी एक लेख में लिख चुका हूं। मैंने एक नहीं चार लेख लिखे हैं। पर छोड़िए तात्कालिक संदर्भ। मैं लगभग पचास साल से पत्रकारिता कर रहा हूं। कम से कम पांच प्रधानमंत्री मेरे बड़े मित्र थे। चंद्रशेखर सबसे बड़े और पुराने, फिर अटल बिहारी वाजपेयी, फिर नरसिंह राव और विश्वनाथ प्रताप सिंह- इनके खिलाफ मैंने क्या-क्या और क्या नहीं लिखा है। दर्जन भर मुख्यमंत्रियों से मेरी बड़ी मित्रता रही। उन पर जो लिखा वह भी सब छपा है। अपनी रतौंध दूर करना चाहें तो पच्चीस साल की जनसत्ता की फाइलें दफ्तर में मौजूद हैं। और यह भी खयाल रखें कि अखबार मित्र की प्रशंसा और आलोचना के लिए ही नहीं होते। उनका एक व्यापक सामाजिक धर्म भी होता है। वह दलित-पिछड़ों की राजनीतिक ताकतों, वाम आंदोलनों और प्रतिरोध की शक्तियों का भी आकलन मांगता है और जिसकी जैसी करनी उसको वैसी ही देने से पूरा होता है। लेकिन वह भी बाद में।

अभी अपन ब्राह्मणवाद देख लें। जनसत्ता की पहली टीम में एक अच्छेलाल प्रजापति हुआ करते थे। कुछ ही महीने काम करके वे कोलकाता गए। वहां से खबर आई कि उनने कहा कि जनसत्ता में तो बड़ा ब्राह्मणवाद चल रहा है। मैं तब डेस्क पर साथियों से मिल कर पहला संस्करण निकाल रहा था। निकल गया तो सबको इकट्ठा करके हमने इस मनोरंजक खबर का मजा लिया। फिर मेरे सुझाव पर पूरी टीम की जातिवादी मर्दुमशुमारी की गई। ब्राह्मण ज्यादा थे। मैं कहा- देख लो अपने ही एक टीम साथी ने आरोप लगाया है। अब हमें ठीक से काम करना है। हम सब हंसे क्योंकि अच्छेलाल प्रजापति भी उसी प्रक्रिया से जनसत्ता में आए थे, जिससे बाकी थे।

जनसत्ता हिंदी का पहला अखबार है जिसका पूरा स्टाफ संघ लोक सेवा आयोग से भी ज्यादा सख्त परीक्षा के बाद लिया गया। सिवाय बनवारी के मैं किसी को भी पहले से जानता नहीं था। बहुत सी अर्जियां आई थीं। उनमें सैकड़ों छांटी गईं। कई दिनों तक लिखित परीक्षाएं चलीं- घंटों लंबी। वे बाहर के जानकारों से जंचवाई गईं। उसके अनुसार बनी मेरिट लिस्ट के प्रत्याशियों को इंटरव्यू के लिए बुलाया गया। इंटरव्यू के लिए भारतीय संचार संस्थान के संस्थापक निदेशक महेंद्र देसाई, प्रेस इंस्टीट्यूट के पूर्व निदेशक चंचल सरकार, गांधीवादी अर्थशास्त्री एलसी जैन, इंडियन एक्सप्रेस के संपादक जॉर्ज वर्गीज- मैं और एक विशेषज्ञ। कई दिन तक इंटरव्यू चले। लिखित और इंटरव्यू की मेरिट लिस्ट के मुताबिक लोगों को काम करने बुलाया। वेतन, पद उसी से तय हुए। कोई भी किसी की सिफारिश या किसी के दबे नहीं रखा गया। इससे ज्यादा वस्तुपरक और तटस्थ कोई प्रक्रिया हो नहीं सकती थी।

हम चुनाव नहीं लड़ रहे थे जो जाति के वोटों का खयाल रखते। मंत्रिमंडल नहीं बना रहे थे जो सबको प्रतिनिधित्व देते। हम नया अखबार निकालने की ऐसी टीम बना रहे थे- जो हलकी हो, फुर्ती से लग और बदल सकती हो और अपने भविष्य के साथ अखबार बना सकती हो। कुछ बरस बाद एक अन्नू आनंद ने लिखा कि प्रभाष जोशी देखते नहीं कि इंडियन एक्सप्रेस में कितनी महिलाएं हैं और जनसत्ता में कितनी कम। जब वे मुझे प्रेस इंस्टीट्यूट में मिलीं तो मैंने पूछा- आप जानती हैं कि एक्सप्रेस की महिलाएं भी मेरी रखी हुई हैं? और चंडीगढ़ एक्सप्रेस में तो आधी महिलाएं थीं।

जिस भाषा में से जैसे लोग पत्रकारिता में निकल कर आएंगे वैसे ही तो रखे जाएंगे। महिला है इसलिए रख लो तो अखबार की टीम कैसे बनेगी? एक्सप्रेस की सब महिलाओं में राधिका राय खास थीं। उन्हें रात की शिफ्ट और अखबार निकालना पसंद था। मैंने संपादक और रामनाथ गोयनका से तय किया था कि राधिका राय को देश की पहली महिला समाचार संपादक बनाएंगे। आजकल वे एनडीटीवी की मलकिन हैं। उनके यहां भी हिंदी में कम और अंग्रेजी में ज्यादा महिलाएं हैं।

मीडिया से दलित-पिछड़ों, वाम आंदोलनों आदि के सरोकार बाहर हुए तो सिर्फ इसलिए नहीं कि वहां घनघोर बाजारवाद और ब्राह्मणवादी पूंजीवाद आ गया है। चौधरी चरण सिंह से लेकर मायावती तक ने दलित-पिछड़ों के हितों की अपनी सत्ता और धन-लालसा में कैसे बरबाद किया है पूरा देश जानता है। वंशवाद और धन के लोभ ने लालू, मुलायम, चौटाला, नीतीश कुमार, अजित सिंह और मायावती को मजबूत विपक्ष बनने के बजाय बिन बुलाए कांग्रेस समर्थक क्यों बनाया है? क्योंकि सबके कंकाल सीबीआई के पास हैं। और नंदीग्राम और सिंगूर के बाद वामपंथी किस नैतिक और वैचारिक समर्थन के हकदार हैं?

दलित-पिछड़ों और वाम आंदोलनों के सरोकारों की दुहाई देकर खबरों के बेचने के काले धंधे को माफ करना चाहते हो? देखते नहीं कि यह बनिए की ब्राह्मण पर जातिवादी विजय भर नहीं है जिस पर प्रमोद रंजन जैसे बच्चे ताली बजाएं। यह भ्रष्ट राजनेताओं और पत्रकारिता को काली कमाई का धंधा बनाने वाले मीडिया मालिकों की मिलीभगत है। सबसे ज्यादा यह भ्रष्ट राजनेताओं के हित में है कि मीडिया अपनी तटस्थता, निष्पक्षता और स्वतंत्रता के बजाय दो नंबर की कमाई की रक्षा करे। पैसा फेंक खबरें छपवा। ऐसा मीडिया लोकतंत्र को बचा नहीं सकेगा। दलित-पिछड़ों और वाम आंदोलनों की जरखरीद लोकतंत्र में कोई पूछ होगी?

यह समझ न आता हो तो अब आओ! कहो कि यह ब्राह्मणवादी प्रभाष जोशी- सती समर्थक, दलित, पिछड़ा, महिला और मुसलमान विरोधी है। अपन इसका भी जवाब देंगे। लेकिन खबरों को बेचने के काले धंधे को रोकने के पुण्य कार्य में फच्चर मत फंसाओ। टिकोगे नहीं!!